अध्याय 7

समकालीन विश्व में सुरक्षा

परिचय

विश्व-राजनीति के बारे में पढ़ते हुए अक्सर हमारा सामना 'सुरक्षा' अथवा 'राष्ट्रीय सुरक्षा' जैसे शब्द से होता है। हम सोचते हैं कि इन शब्दों के अर्थ हमें मालूम है। लेकिन, क्या सचमुच हमें इन शब्दों के अर्थ मालूम हैं? बहस या चर्चा को रोकना हो तो अक्सर इस जुमले का इस्तेमाल होता है। कहा जाता है कि यह सुरक्षा का मसला है और देश की भलाई के लिए बड़ा ज़रूरी है। ऐसा कहने का मकसद यह जताना होता है कि मसला बड़ा महत्त्वपूर्ण अथवा गुप्त है और इस कारण उस पर खुली चर्चा नहीं हो सकती। हम ऐसी फिल्में देखते हैं जिसमें 'राष्ट्रीय सुरक्षा' से जुड़ा सब कुछ बड़ा ढँका-छुपा और खतरनाक होता है। ऐसा जान पड़ता है कि मानों सुरक्षा सात तालों के भीतर की चीज हो और जिससे आम नागरिक का कुछ लेना-देना न हो। लेकिन लोकतंत्र में कोई भी बात इतनी ढँकी-छुपी नहीं रखी जा सकती। सुरक्षा के बारे में हमें और ज़्यादा जानने की ज़रूरत है। सुरक्षा क्या है, भारत के सुरक्षा सरोकार क्या-क्या हैं? यह अध्याय इन सवालों पर बहस करता है। इसमें सुरक्षा को समझने के दो नज़रियों की चर्चा की गई है। अध्याय में इस बात पर जोर दिया गया है कि विभिन्न संदर्भ और स्थितियों को ध्यान में रखना ज़रूरी है क्योंकि इसी से सुरक्षा के बारे में हमारा नज़रिया बनता है।

ये चित्र सुरक्षा के दो भिन्न पहलुओं को दर्शाते हैं। कुछ चित्र ग्वेटामाला में चल रहे गृह-युद्ध के हैं। आप देख सकते हैं कि माताएँ युद्ध में खोए अपने बच्चों का इंतजार कर रही हैं और युद्ध में शहीद हुए लोगों को याद किया जा रहा है। कुछ चित्र बांग्लोदश के हैं। इनमें बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदा से पैदा हुई असुरक्षा को दिखाया गया है।

मेरी सुरक्षा के बारे में किसने फैसला किया? कुछ नेताओं और विशेषज्ञों ने? क्या मैं अपनी सुरक्षा का फैसला नहीं कर सकती?

सुरक्षा क्या है?

सुरक्षा का बुनियादी अर्थ है खतरे से आज़ादी। मानव का अस्तित्व और किसी देश का जीवन खतरों से भरा होता है। तब क्या इसका मतलब यह है कि हर तरह के ख़तरे को सुरक्षा पर खतरा माना जाय? आदमी जब भी अपने घर से बाहर कदम निकालता है तो उसके अस्तित्व अथवा जीवन-यापन के तरीकों को किसी न किसी अर्थ में खतरा ज़रूर होता है। यदि हमने खतरे का इतना व्यापक अर्थ लिया तो फिर हमारी दुनिया में हर घड़ी और हर जगह सुरक्षा के ही सवाल नज़र आयेंगे।

इसी कारण जो लोग सुरक्षा विषयक अध्ययन करते हैं उनका कहना है कि केवल उन चीजों को 'सुरक्षा' से जुड़ी चीजों का विषय बनाया जाय जिनसे जीवन के 'केंद्रीय मूल्यों' को खतरा हो। तो फिर सवाल बनता है कि किसके केंद्रीय मूल्य? क्या पूरे देश के 'केंद्रीय मूल्य'? आम स्त्री-पुरुषों के केंद्रीय मूल्य ? क्या नागरिकों की नुमाइंदगी करने वाली सरकार हमेशा 'केंद्रीय मूल्यों' का वही अर्थ ग्रहण करती है जो कोई साधारण नागरिक?

इसके अतिरिक्त जब हम केंद्रीय मूल्यों पर मंडराते ख़तरों की बात कहते हैं तो यह सवाल भी उठता है कि ये ख़तरे कितने गहरे होने चाहिए? जो मूल्य हमें प्यारे हैं कमोबेश उन सभी को बड़े या छोटे ख़तरे होते हैं। क्या हर ख़तरे को सुरक्षा की समझ में शामिल किया जा सकता है? जब भी कोई राष्ट्र कुछ करता है अथवा कुछ करने में असफल होता है तो संभव है इससे किसी अन्य देश के केंद्रीय मूल्यों को हानि पहुँचती हो। जब भी राहगीर अपनी राह में लूटा जाता है तो आम आदमी के रोजमर्रा के जीवन को क्षति पहुँचती है। फिर भी, अगर हम सुरक्षा का इतना व्यापक अर्थ करें तो हाथ-पांव हिलाना भी मुश्किल हो जाएगा; हर जगह हमें ख़तरे नज़र आएँगे।

इस तरह देखें तो हम इन बातों से एक निष्कर्ष निकाल सकते हैं। सुरक्षा का रिश्ता फिर बड़े गंभीर खतरों से है; ऐसे खतरे जिनको रोकने के उपाय न किए गए तो हमारे केंद्रीय मूल्यों को अपूरणीय क्षति पहुँचेगी।

ये बातें तो ठीक हैं, फिर भी हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि 'सुरक्षा' अपने आप में भुलैयादार धारणा है। मिसाल के लिए हम यह पूछ सकते हैं कि क्या सदियों अथवा दशकों से विभिन्न समाजों में सुरक्षा की एकसमान धारणा चली आ रही है? ऐसा हो तो आश्चर्यजनक है क्योंकि संसार में कितनी ही बातें रोज

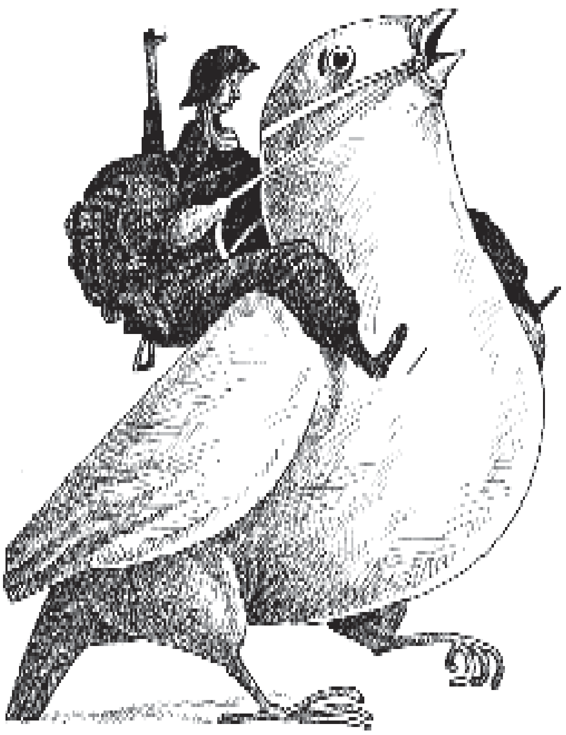

एस, केशल्स कार्टून

आपने 'शांति-सेना' के बारे में सुना होगा। क्या आपको लगता है कि 'शांति-सेना' का होना स्वयं में एक विरोधाभासी बात है?

बदलती रहती हैं। फिर हम यह सवाल भी कर सकते हैं कि क्या किसी ख़ास समय में विश्व के सभी समाजों में सुरक्षा की एक जैसी धारणा रहती है? यह बात भी हजम नहीं होती और आश्चर्यजनक लगती है कि करीब 200 मुल्कों के 7 अरब लोग सुरक्षा की एक जैसी धारणा रखते हों? ऐसे में आपको यह जानकार कोई धक्का नहीं लगेगा कि सुरक्षा एक विवादग्रस्त धारणा है। आइए, सुरक्षा की विभिन्न धारणाओं को दो कोटियों में रखकर समझने की कोशिश करते हैं यानी सुरक्षा की पारंपरिक और अपारंपरिक धारणा।

पारंपरिक धारणा – बाहरी सुरक्षा

अधिकांशतया जब हम सुरक्षा के बारे में कुछ पढ़ या सुन रहे होते हैं तो हमारा सामना सुरक्षा की पारंपरिक अर्थात् राष्ट्रीय सुरक्षा की धारणा से होता है। सुरक्षा की पारंपरिक अवधारणा में सैन्य ख़तरे को किसी देश के लिए सबसे ज़्यादा ख़तरनाक माना जाता है। इस ख़तरे का स्रोत कोई दूसरा मुल्क होता है जो सैन्य हमले की धमकी देकर संप्रभुता, स्वतंत्रता और क्षेत्रीय अखंडता जैसे किसी देश के केंद्रीय मूल्यों के लिए ख़तरा पैदा करता है। सैन्य कार्रवाई से आम नागरिकों के जीवन को भी ख़तरा होता है। शायद ही कभी ऐसा होता हो कि किसी युद्ध में सिर्फ सैनिक घायल हों अथवा मारे जायें। आम स्त्री-पुरुष को भी युद्ध में हानि उठानी पड़ती है। अक्सर निहत्थे और आम औरत-मर्द को जंग का निशाना बनाया जाता है; उनका और उनकी सरकार का हौसला तोड़ने की कोशिश होती है।

एस. कोल्स कार्टून

युद्ध की अर्थव्यवस्था

बुनियादी तौर पर किसी सरकार के पास युद्ध की स्थिति में तीन विकल्प होते हैं – आत्मसमर्पण करना तथा दूसरे पक्ष की बात को बिना युद्ध किए मान लेना अथवा युद्ध से होने वाले नाश को इस हद तक बढ़ाने के संकेत देना कि दूसरा पक्ष सहमकर हमला करने से बाज आये या युद्ध ठन जाय तो अपनी रक्षा करना ताकि हमलावर देश अपने मकसद में कामयाब न हो सके और पीछे हट जाए अथवा हमलावार को पराजित कर देना। युद्ध में कोई सरकार भले ही आत्मसमर्पण कर दे लेकिन वह इसे अपने देश की नीति के रूप में कभी प्रचारित नहीं करना चाहेगी। इस कारण, सुरक्षा-नीति का संबंध युद्ध की आशंका को रोकने में होता है जिसे 'अपरोध' कहा जाता है और युद्ध को सीमित रखने अथवा उसको समाप्त करने से होता है जिसे रक्षा कहा जाता है।

परंपरागत सुरक्षा-नीति का एक तत्त्व और है। इसे शक्ति-संतुलन कहते हैं। कोई देश

युद्ध का मतलब है असुरक्षा, विध्वंस और मृत्यु! युद्ध किसी को क्या सुरक्षा दे पाएगा?

ग्रिस्टो कोमर, केगल्स कार्टून

जब कोई नया देश परमाणु शक्ति-संपन्न होने की दावेदारी करता है तो बड़ी ताकतें क्या रवैया अख्तियार करती हैं? हमारे पास यह कहने के क्या आधार हैं कि परमाण्विक हथियारों से लैस कुछ देशों पर तो विश्वास किया जा सकता है परंतु कुछ पर नहीं?

अपने अड़ोस-पड़ोस में देखने पर पाता है कि कुछ मुल्क छोटे हैं तो कुछ बड़े। इससे इशारा मिल जाता है कि भविष्य में किस देश से उसे खतरा हो सकता है। मिसाल के लिए कोई पड़ोसी देश संभव है यह न कहे कि वह हमले की तैयारी में जुटा है। हमले का कोई प्रकट कारण भी नहीं जान पड़ता हो। फिर भी यह देखकर कि कोई देश बहुत ताकतवर है यह भांपा जा सकता है कि भविष्य में वह हमलावर हो सकता है। इस वजह से हर सरकार दूसरे देश से अपने शक्ति-संतुलन को लेकर बहुत संवेदनशील रहती है। कोई सरकार दूसरे देशों से शक्ति-संतुलन का पलड़ा अपने पक्ष में बैठाने के लिए जी-तोड़ कोशिश करती है। जो देश नजदीक हों, जिनके साथ अनबन हो या जिन देशों के साथ अतीत में लड़ाई हो चुकी हो उनके साथ शक्ति-संतुलन को अपने पक्ष में करने पर ख़ास तौर पर जोर दिया जाता है। शक्ति-संतुलन बनाये रखने की यह कवायद ज़्यादातर अपनी सैन्य-शक्ति बढ़ाने की होती है लेकिन आर्थिक और प्रौद्योगिकी की ताकत भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सैन्य-शक्ति का यही आधार है।

पारंपरिक सुरक्षा-नीति का चौथा तत्त्व है गठबंधन बनाना। गठबंधन में कई देश शामिल होते हैं और सैन्य हमले को रोकने अथवा उससे रक्षा करने के लिए समवेत कदम उठाते हैं। अधिकांश गठबंधनों को लिखित संधि से एक औपचारिक रूप मिलता है और ऐसे गठबंधनों को यह बात बिलकुल स्पष्ट रहती है कि खतरा किससे है। किसी देश अथवा गठबंधन की तुलना में अपनी ताकत का असर बढ़ाने के लिए देश गठबंधन बनाते हैं। गठबंधन राष्ट्रीय हितों पर आधारित होते हैं और राष्ट्रीय हितों के बदलने पर गठबंधन भी बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमरीका ने सन् 1980 के दशक में सोवियत संघ के खिलाफ इस्लामी उग्रवादियों को समर्थन दिया लेकिन ओसामा बिन लादेन के नेतृत्व में अल-कायदा नामक समूह के आतंकवादियों ने जब 11 सितंबर 2001 के दिन उस पर हमला किया तो उसने इस्लामी उग्रवादियों के खिलाफ मोर्चा खोल दिया।

सुरक्षा की परंपरागत धारणा में माना जाता है कि किसी देश की सुरक्षा को ज़्यादातर ख़तरा उसकी सीमा के बाहर से होता है। इसकी वज़ह है अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था। इस निर्मम मैदान में ऐसी कोई केंद्रीय ताकत नहीं जो देशों के व्यवहार-बरताव पर अंकुश रखने में सक्षम हो। किसी देश के भीतर हिंसा के ख़तरों से निपटने के लिए एक जानी-पहचानी व्यवस्था होती है – इसे सरकार कहते हैं। लेकिन, विश्व-राजनीति में ऐसी कोई केंद्रीय सत्ता नहीं जो सबके ऊपर हो। यह सोचने का लालच हो सकता है कि

संयुक्त राष्ट्रसंघ ऐसी सत्ता है अथवा ऐसा बन सकता है। बहरहाल, फिलहाल अपनी बनावट के अनुरूप संयुक्त राष्ट्रसंघ अपने सदस्य देशों का दास है और इसके सदस्य देश जितनी सत्ता इसको सौंपते और स्वीकारते हैं उतनी ही सत्ता इसे हासिल होती है। अत: विश्व-राजनीति में हर देश को अपनी सुरक्षा की जिम्मेदारी खुद उठानी होती है।

पारंपरिक धारणा- आंतरिक सुरक्षा

इतनी बातों को पढ़ने के बाद आपके जेहन में यह सवाल ज़रूर कौंधा होगा कि क्या सुरक्षा आंतरिक शांति और कानून-व्यवस्था पर निर्भर नहीं करती? अगर किसी देश के भीतर रक्तपात हो रहा हो अथवा होने की आशंका हो तो वह देश सुरक्षित कैसे हो सकता है? यह बाहर के हमलों से निपटने की तैयारी कैसे करेगा जबकि खुद अपनी सीमा के भीतर सुरक्षित नहीं है?

इसी कारण सुरक्षा की परंपरागत धारणा का ज़रूरी रिश्ता अंदरूनी सुरक्षा से भी है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से इस पहलू पर ज़्यादा जोर नहीं दिया गया तो इसका कारण यही था कि दुनिया के अधिकांश ताकतवर देश अपनी अंदरूनी सुरक्षा के प्रति कमोबेश आश्वस्त थे। हमने पहले कहा था कि संदर्भ और स्थिति को नज़र में रखना ज़रूरी है। आंतरिक सुरक्षा ऐतिहासिक रूप से सरकारों का सरोकार बनी चली आ रही थी लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध के बाद ऐसे हालात और संदर्भ सामने आये कि आंतरिक सुरक्षा पहले की तुलना में कहीं कम महत्त्व की चीज बन गई। सन् 1945 के बाद ऐसा जान पड़ा कि संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ अपनी सीमा के अंदर एकीकृत और शांति संपन्न हैं। अधिकांश यूरोपीय देशों, खासकर ताकतवर पश्चिमी मुल्कों के सामने अपनी सीमा के भीतर बसे समुदायों अथवा वर्गों से कोई गंभीर खतरा नहीं था। इस कारण इन देशों ने अपना ध्यान सीमापार के खतरों पर केंद्रित किया।

इन देशों के सामने बाहरी खतरे क्या थे? यहाँ पर फिर हमें संदर्भ और स्थिति पर ध्यान देना होगा। हम इस बात को जानते हैं कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद शीतयुद्ध का दौर चला और इस दौर में संयुक्त राष्ट्र अमरीका के नेतृत्व वाला पश्चिमी गुट तथा सोवियत संघ की अगुआई वाला साम्यवादी गुट एक-दूसरे के आमने-सामने थे। सबसे बड़ी बात यह कि दोनों गुटों को अपने ऊपर एक-दूसरे से सैन्य हमले का भय था। इसके अतिरिक्त, कुछ यूरोपीय देशों को अपने उपनिवेशों में उपनिवेशीकृत जनता से खून-खराबे की चिंता सता रही थी। अब ये लोग आज़ादी चाहते थे। इस सिलसिले में हम याद करें कि 1950 के दशक में फ्रांस को वितयनाम अथवा सन् 1950 और 1960 के दशक में ब्रिटेन को केन्या में जूझना पड़ा।

उपनिवेशों ने 1940 के दशक के उत्तरार्द्ध से आजाद होना शुरू किया और उनके सुरक्षा-सरोकार अक्सर यूरोपीय ताकतों के समान ही थे। कुछ नव स्वतंत्र देश यूरोपीय ताकतों के समान शीतयुद्धकालीन गुटों में एक न एक के सदस्य बन गए। ऐसे में इन देशों को जोर पकड़ते शीतयुद्ध की चिंता करनी थी और दूसरे खेमे में जाने वाले अपने पड़ोसी देश अथवा दूसरे गुट के नेता (संयुक्त राज्य अमरीका अथवा सोवियत संघ) से दुश्मनी ठाननी थी या अमरीका अथवा सोवियत संघ के किसी साथी देश से वैर मोलना था। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जितने युद्ध हुए उसमें एक तिहाई

खुद करें, खुद सीखें

एक हफ्ते के अखबार पर नज़र दौड़ाएँ और पूरे विश्व में चल रहे अंदरूनी तथा बाहरी संघर्षों की सूची बनाएँ।

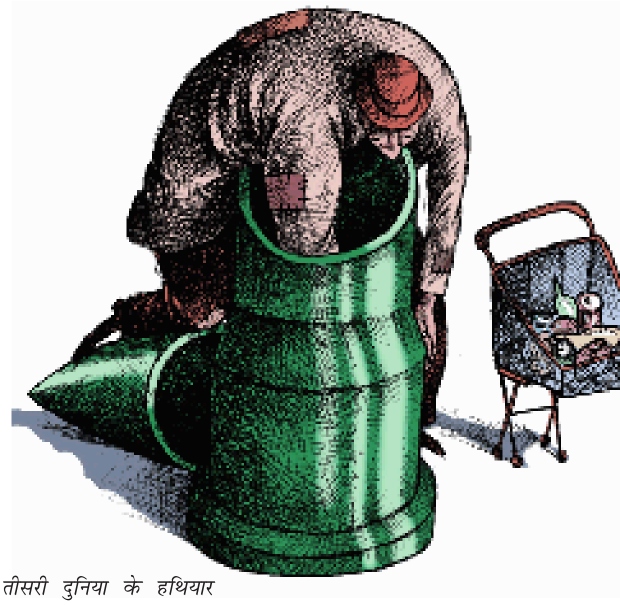

तीसरी दुनिया के हथियार

एरेस, केगल्स कार्टून

युद्धों के लिए शीतयुद्ध जिम्मेदार रहा। इनमें से अधिकांश युद्ध तीसरी दुनिया में हुए। जिस तरह विदा होती औपनिवेशिक ताकतों को उपनिवेशों में खून-खराबे का भय सता रहा था उसी तरह आजादी के बाद कुछ उपनिवेशित मुल्कों को डर था कि उनके यूरोपीय औपनिवेशिक शासक कहीं उन पर हमला न बोल दें। ऐसे में इन मुल्कों को एक साम्राज्यवादी युद्ध से अपनी रक्षा के लिए तैयारी करनी पड़ी।

जो अपने ही देश के खिलाफ लड़ते हैं निश्चित ही वे किन्हीं बातों से नाखुश होते हैं। शायद यह उनकी असुरक्षा ही है जो देश के लिए असुरक्षा पैदा करती है।

एशिया और अफ्रीका के नव स्वतंत्र देशों के सामने खड़ी सुरक्षा की चुनौतियाँ यूरोपीय देशों के मुकाबले दो मायनों में विशिष्ट थीं। एक तो इन देशों को अपने पड़ोसी देश से सैन्य हमले की आशंका थी। दूसरे, इन्हें अंदरूनी सैन्य-संघर्ष की भी चिंता करनी थी।

इन देशों को सीमापार से खतरा तो था ही, खासकर पड़ोसी देशों से; साथ ही भीतर से भी खतरे की आशंका थी। अनेक नव स्वतंत्र देश संयुक्त राज्य अमरीका या सोवियत संघ अथवा औपनिवेशिक ताकतों से कहीं ज़्यादा अपने पड़ोसी देशों से आशंकित थे। इनके बीच सीमा रेखा और भूक्षेत्र अथवा आबादी पर नियंत्रण को लेकर या एक-एक करके सभी सवालों पर झगड़े हुए।

अलग राष्ट्र बनाने पर तुले अंदर के अलगाववादी आंदोलनों से भी इन देशों को खतरा था। कोई पड़ोसी मुल्क ऐसे अलगाववादी आंदोलन को हवा दे अथवा उसकी सहायता करे तो दो पड़ोसी देशों के बीच तनाव की स्थिति बनती थी (विश्व के सशस्त्र संघर्षों में 95 प्रतिशत अब आंतरिक युद्ध के अंतर्गत हैं। सन् 1946 से 1991 के बीच गृह युद्धों की संख्या में दोगुनी वृद्धि हुई है जो पिछले 200 वर्षों में सबसे लंबी छलांग है।) इस तरह, पड़ोसी देशों से युद्ध और आंतरिक संघर्ष नव-स्वतंत्र देशों के सामने सुरक्षा की सबसे बड़ी चुनौती थे।

सुरक्षा के पारंपरिक तरीके

सुरक्षा की परंपरागत धारणा में स्वीकार किया जाता है कि हिंसा का इस्तेमाल यथासंभव सीमित होना चाहिए। युद्ध के लक्ष्य और साधन दोनों से इसका संबंध है। 'न्याय-युद्ध' की यूरोपीय परंपरा का ही यह परवर्ती विस्तार है कि आज लगभग पूरा विश्व मानता है कि किसी देश को युद्ध उचित कारणों यानी आत्म-रक्षा अथवा दूसरों को जनसंहार से बचाने के लिए ही करना चाहिए। इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी युद्ध में युद्ध-साधनों का सीमित इस्तेमाल होना चाहिए। युद्धरत् सेना को चाहिए कि वह संघर्षविमुख शत्रु, निहत्थे व्यक्ति अथवा आत्मसपर्मण करने वाले शत्रु को न मारे। सेना को उतने ही बल का प्रयोग करना चाहिए जितना आत्मरक्षा के लिए ज़रूरी हो और उसे एक सीमा तक ही हिंसा का सहारा लेना चाहिए। बल प्रयोग तभी किया जाय जब बाकी उपाय असफल हो गए हों।

इस चित्र के भीतर लिखा है – क्या देश पर खतरे के बादल मंडरा रहे हैं? अगर इसमें आप कोई फैसला नहीं कर पा रहे तो गृह रक्षा-विभाग के इस ***आतंकमापी*** *का इस्तेमाल करें। यह मीटर आपको बताता है कि देश पर आतंक का साया कितना घना है। आतंकसूचक सूई को ऊपर दिए गए खानों में से किसी एक पर ले जायें जो आपके जानते मौजूदा खौफ़ की सही तस्वीर पेश करता हो। इससे पता चलेगा कि अमरीकी जनता आतंकी हमले को लेकर कितनी आशंकित है। आतंक हमारे हर तरफ है और वह कभी भी हम पर झपट सकता है। इस* ***आतंकमापी*** *के बूते आपको पता चल जाएगा कि आपको कितना भयभीत रहना है। सावधानीपूर्वक सूई घुमाएँ"*

सुरक्षा की परंपरागत धारणा इस संभावना से इन्कार नहीं करती कि देशों के बीच एक न एक रूप में सहयोग हो। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है – निरस्त्रीकरण, अस्त्र-नियंत्रण तथा विश्वास की बहाली। निरस्त्रीकरण की माँग होती है कि सभी राज्य चाहे उनका आकार, ताकत और प्रभाव कुछ भी हो, कुछ खास किस्म के हथियारों से बाज आयें। उदाहरण के लिए, 1972 की जैविक हथियार संधि (बॉयोलॉजिकल वीपन्स कंवेंशन BWC) तथा 1992 की रासायनिक हथियार संधि (केमिकल वीपन्स कंवेंशन- CWC) में ऐसे हथियार को बनाना और रखना प्रतिबंधित कर दिया गया है। 155 से ज़्यादा देशों ने BWC संधि पर और 181 देशों ने CWC संधि पर हस्ताक्षर किए हैं। इन दोनों संधियों पर दस्तख़्त करने वालों में सभी महाशक्तियाँ शामिल हैं। लेकिन महाशक्तियाँ – अमरीका तथा सोवियत संघ सामूहिक संहार के अस्त्र यानी परमाण्विक हथियार का विकल्प नहीं छोड़ना चाहती थीं इसलिए दोनों ने अस्त्र-नियंत्रण का सहारा लिया।

अस्त्र नियंत्रण के अंतर्गत हथियारों को विकसित करने अथवा उनको हासिल करने के संबंध में कुछ कायदे-कानूनों का पालन करना पड़ता है। सन् 1972 की एंटी बैलेस्टिक मिसाइल संधि (ABM) ने अमरीका और सोवियत संघ को बैलेस्टिक मिसाइलों को रक्षा-कवच के रूप में इस्तेमाल करने से रोका। ऐसे प्रक्षेपास्त्रों से हमले की शुरुआत की जा सकती थी। संधि में दोनों देशों को सीमित संख्या में ऐसी रक्षा-प्रणाली तैनात करने की अनुमति थी लेकिन इस संधि ने दोनों देशों को ऐसी रक्षा-प्रणाली के व्यापक उत्पादन से रोक दिया।

जैसा कि हमने अध्याय एक में देखा है, अमरीका और सोवियत संघ ने अस्त्र-नियंत्रण की कई अन्य संधियों पर हस्ताक्षर किए जिसमें सामरिक अस्त्र परिसीमन संधि-2 (स्ट्रैटजिक आर्म्स लिमिटेशन ट्रीटी- SALT II) और सामरिक अस्त्र न्यूनीकरण संधि (स्ट्रेटजिक आर्म्स रिडक्शन ट्रीटी-(START) शामिल हैं। परमाणु अप्रसार संधि (न्यूक्लियर नॉन प्रोलिफेरेशन ट्रीटी-NPT (1968) भी एक

वाह रे! पहले तो इन लोगों ने ये मारक और महंगे हथियार बनाए, फिर इन हथियारों से खुद को बचाने के लिए ये जटिल संधियाँ कीं। इसे कहते हैं सुरक्षा!

अर्थ में अस्त्र नियंत्रण संधि ही थी क्योंकि इसने परमाण्विक हथियारों के उपार्जन को कायदे-कानून के दायरे में ला खड़ा किया। जिन देशों ने सन् 1967 से पहले परमाणु हथियार बना लिये थे या उनका परीक्षण कर लिया था उन्हें इस संधि के अंतर्गत इन हथियारों को रखने की अनुमति दी गई। जो देश सन् 1967 तक ऐसा नहीं कर पाये थे उन्हें ऐसे हथियारों को हासिल करने के अधिकार से वंचित किया गया। परमाणु अप्रसार संधि ने परमाण्विक आयुधों को समाप्त तो नहीं किया लेकिन इन्हें हासिल कर सकने वाले देशों की संख्या ज़रूर कम की।

सुरक्षा की पारंपरिक धारणा में यह बात भी मानी गई है कि विश्वास बहाली के उपायों से देशों के बीच हिंसाचार कम किया जा सकता है। विश्वास बहाली की प्रक्रिया में सैन्य टकराव और प्रतिद्वन्द्विता वाले देश सूचनाओं तथा विचारों के नियमित आदान-प्रदान का फैसला करते हैं। दो देश एक-दूसरे को अपने फौजी मकसद तथा एक हद तक अपनी सैन्य योजनाओं के बारे में बताते हैं। ऐसा करके ये देश अपने प्रतिद्वन्द्वी को इस बात का आश्वासन देते हैं कि उनकी तरफ से औचक हमले की योजना नहीं बनायी जा रही। देश एक-दूसरे को यह भी बताते हैं कि उनके पास किस तरह के सैन्य-बल हैं। वे यह भी बता सकते हैं कि इन बलों को कहाँ तैनात किया जा रहा है। संक्षेप में कहें तो विश्वासी बहाली की प्रक्रिया यह सुनिश्चित करती है कि प्रतिद्वन्द्वी देश किसी ग़लतफहमी या गफलत में पड़कर जंग के लिए आमादा न हो जाएँ।

कुल मिलाकर देखें तो सुरक्षा की परंपरागत धारणा मुख्य रूप से सैन्य बल के प्रयोग अथवा सैन्य बल के प्रयोग की आशंका से संबद्ध है। सुरक्षा की पारंपरिक धारणा में माना जाता है कि सैन्य बल से सुरक्षा को खतरा पहुँचता है और सैन्य बल से ही सुरक्षा को कायम रखा जा सकता है।

सुरक्षा की अपारंपरिक धारणा

सुरक्षा की अपारंपरिक धारणा सिर्फ सैन्य खतरों से संबद्ध नहीं। इसमें मानवीय अस्तित्व पर चोट करने वाले व्यापक खतरों और आशंकाओं को शामिल किया जाता है। इसकी शुरुआत होती है पारंपरिक सुरक्षा की धारणा के भीतर स्वीकार किए गए संदर्भों

जाएँ तो जाएँ कहाँ — **एंडी सिंगर**

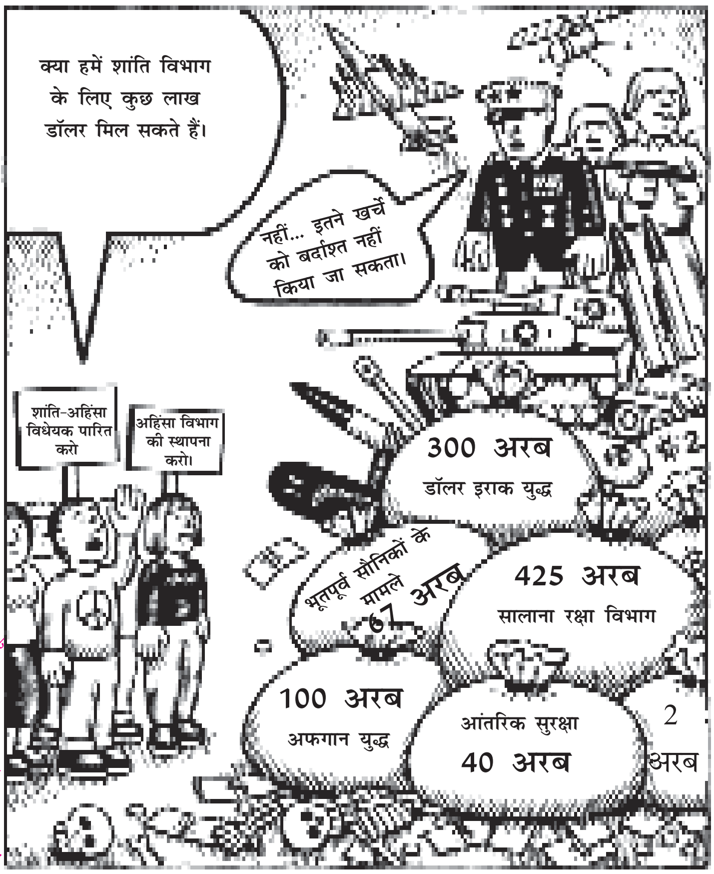

एंडी सिंगर, केगल्स कार्टून

अमरीका में सुरक्षा पर तो भारी-भरकम खर्च होता है जबकि शांति से जुड़े मामलों पर बहुत कम ही खर्च किया जाता है। यह कार्टून इस स्थिति पर एक टिप्पणी करता है। क्या हमारे देश में हालत इससे कुछ अलग है?

(सुरक्षा किसकी?) पर सवाल उठाकर। ऐसा करते हुए सुरक्षा के तीन और तत्त्वों – किन चीजों की सुरक्षा, किन खतरों से सुरक्षा और सुरक्षा के तरीके पर भी प्रश्नचिह्न लगाया जाता है। जब हम संदर्भी की बात करते हैं तो हमारा आशय होता है – 'सुरक्षा किसको चाहिए? सुरक्षा की पारंपरिक धारणा में भूक्षेत्र और संस्थाओं सहित राज्य को संदर्भी माना जाता है। सुरक्षा की अपारंपरिक धारणा में संदर्भी का दायरा बड़ा होता है। जब हम पूछते हैं कि 'सुरक्षा किसको'? तो सुरक्षा की अपारंपरिक धारणा के प्रतिपादकों का जवाब होता है – ''सिर्फ राज्य ही नहीं व्यक्तियों और समुदायों या कहें कि समूची मानवता को सुरक्षा की ज़रूरत है।'' इसी कारण सुरक्षा की अपारंपरिक धारणा को 'मानवता की सुरक्षा' अथवा 'विश्व-रक्षा' कहा जाता है।

मानवता की रक्षा का विचार जनता-जनार्दन की सुरक्षा को राज्यों की सुरक्षा से बढ़कर मानता है। मानवता की सुरक्षा और राज्य की सुरक्षा एक-दूसरे के पूरक होने चाहिए और अक्सर होते भी हैं। लेकिन सुरक्षित राज्य का मतलब हमेशा सुरक्षित जनता नहीं होता। नागरिकों को विदेशी हमले से बचाना भले ही उनकी सुरक्षा की ज़रूरी शर्त्त हो लेकिन इतने भर को पर्याप्त नहीं माना जा सकता। सच्चाई यह है कि पिछले 100 वर्षों में जितने लोग विदेशी सेना के हाथों मारे गए उससे कहीं ज़्यादा लोग खुद अपनी ही सरकारों के हाथों खेत रहे।

मानवता की सुरक्षा के सभी पैरोकार मानते हैं कि इसका प्राथमिक लक्ष्य व्यक्तियों की संरक्षा है। बहरहाल, इस बात पर मतभेद है कि ठीक-ठीक ऐसे कौन-से खतरे हैं जिनसे व्यक्तियों को बचाया जाना चाहिए। मानवता की सुरक्षा का संकीर्ण अर्थ लेने वाले पैरोकारों का जोर व्यक्तियों को हिंसक खतरों यानी खून-खराबे से बचाने पर होता है या संयुक्त राष्ट्रसंघ के भूतपूर्व महासचिव कोफ़ी अन्नान के शब्दों में कहें तो ऐसे पैरोकारों का आशय होता है 'व्यक्तियों और समुदायों को अंदरूनी खून - खराबा से बचाना।' मानवता की सुरक्षा का व्यापक अर्थ लेने वाले पैरोकारों का तर्क है कि खतरों की सूची में अकाल, महामारी और आपदाओं को भी शामिल किया जाना चाहिए क्योंकि युद्ध, जन-संहार और आतंकवाद साथ मिलकर जितने लोगों को मारते हैं उससे कहीं ज़्यादा लोग अकाल, महामारी और प्राकृतिक आपदा की भेंट चढ़ जाते हैं। मानवता की सुरक्षा के व्यापकतम अर्थ में आर्थिक सुरक्षा और मानवीय गरिमा की सुरक्षा को भी शामिल किया जाता है। तनिक अलग अंदाज में कहें तो मानवता की रक्षा के व्यापकतम नज़रिए में जोर 'अभाव से मुक्ति' और 'भय से मुक्ति' पर दिया जाता है।

विश्वव्यापी खतरे जैसे वैश्विक तापवृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग), अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद तथा एड्स और बर्ड फ्लू जैसी महामारियों के

अब लग रहा है कि बात हो रही है! इसे ही मैं सचमुच के आदमी के लिए सचमुच की सुरक्षा कहता हूँ।

मानवाधिकारों के उल्लंघन की बात हो तो हम हमेशा बाहर क्यों देखते हैं? क्या हमारे अपने देश में इसके उदाहरण नहीं मिलते?

मद्देनज़र 1990 के दशक में विश्व-सुरक्षा की धारणा उभरी। कोई भी देश इन समस्याओं का समाधान अकेले नहीं कर सकता। ऐसा भी हो सकता है कि किन्हीं स्थितियों में किसी एक देश को इन समस्याओं की मार बाकियों की अपेक्षा ज़्यादा झेलनी पड़े। उदाहरण के लिए, वैश्विक तापवृद्धि से अगर समुद्रतल दो मीटर ऊँचा उठता है तो बांग्लादेश का 20 प्रतिशत हिस्सा डूब जाएगा; कमोबेश पूरा मालदीव सागर में समा जाएगा और थाइलैंड की 50 फीसदी आबादी को खतरा पहुँचेगा। चूँकि इन समस्याओं की प्रकृति वैश्विक है इसलिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है, भले ही इसे हासिल करना मुश्किल हो।

खतरे के नये स्रोत

सुरक्षा की अपारंपरिक धारणा के दो पक्ष हैं– मानवता की सुरक्षा और विश्व सुरक्षा। ये दोनों सुरक्षा के संदर्भ में खतरों की बदलती प्रकृति पर जोर देते हैं। हम नीचे के खंड में ऐसे कुछ खतरों की चर्चा करेंगे।

आतंकवाद का आशय राजनीतिक खून-खराबे से है जो जान-बूझकर और बिना किसी मुरौव्वत के नागरिकों को अपना निशाना बनाता है। अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद एक से ज़्यादा देशों में व्याप्त है और उसके निशाने पर कई देशों के नागरिक हैं। कोई राजनीतिक संदर्भ या स्थिति नापसंद हो तो आतंकवादी समूह उसे बल-प्रयोग अथवा बल-प्रयोग की धमकी देकर बदलना चाहते हैं। जनमानस को आतंकित करने के लिए नागरिकों को निशाना बनाया जाता है और आतंकवाद नागरिकों के असंतोष का इस्तेमाल राष्ट्रीय सरकारों अथवा संघर्षों में शामिल अन्य पक्ष के ख़िलाफ करता है।

आतंकवाद के चिर-परिचित उदाहरण हैं विमान-अपहरण अथवा भीड़ भरी जगहों जैसे रेलगाड़ी, होटल, बाज़ार या ऐसी ही अन्य जगहों पर बम लगाना। सन् 2001 के 11 सितंबर को आतंकवादियों ने अमरीका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमला बोला। इस घटना के बाद से दूसरे मुल्क और वहाँ की सरकारें आतंकवाद पर ज़्यादा ध्यान देने लगी हैं। बहरहाल, आतंकवाद कोई नयी परिघटना नहीं है। गुजरे वक्त में आतंकवाद की अधिकांश घटनाएँ मध्यपूर्व, यूरोप, लातिनी अमरीका और दक्षिण एशिया में हुईं।

मानवाधिकार – मानवाधिकार को तीन कोटियों में रखा गया है। हो सकता है आपको लगे कि मानवाधिकारों की इससे कहीं ज़्यादा कोटियाँ हो सकती हैं लेकिन इन तीनों कोटियों से मानवाधिकार विषयक चर्चा की शुरुआत की जा सकती है। पहली कोटि राजनीतिक अधिकारों की है जैसे अभिव्यक्ति और सभा करने की आज़ादी। दूसरी कोटि

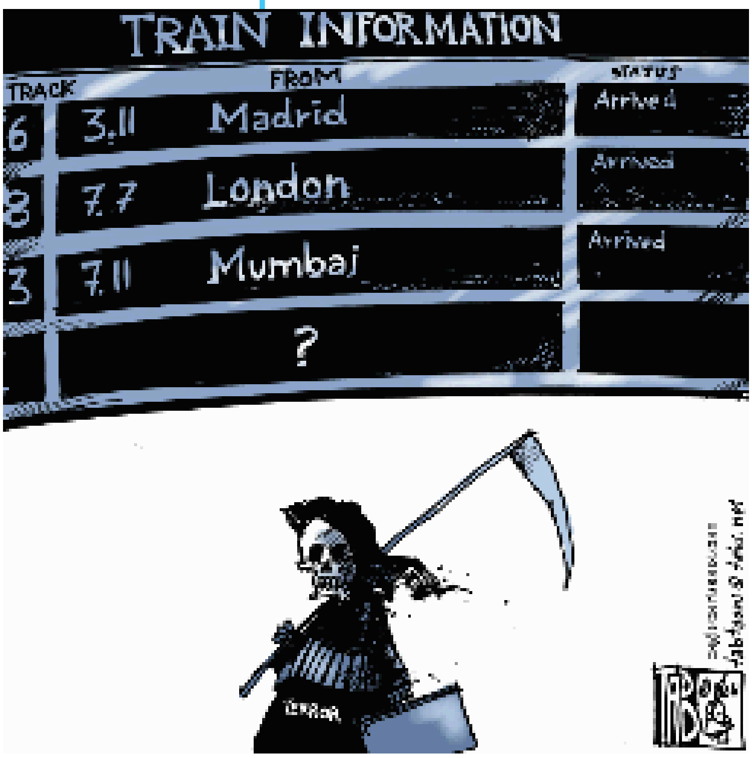

टेब, केगल्स कार्टून

आर्थिक और सामाजिक अधिकारों की है। अधिकारों की तीसरी कोटि में उपनिवेशीकृत जनता अथवा जातीय और मूलवासी अल्पसंख्यकों के अधिकार आते हैं। इस वर्गीकरण को लेकर व्यापक सहमति है लेकिन इस बात पर सहमति नहीं बन पायी है कि इनमें से किस कोटि के अधिकारों को सार्वभौम मानवाधिकारों की संज्ञा दी जाए या इन अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी को क्या करना चाहिए?

1990 के दशक से कुछ घटनाओं मसलन रवांडा में जनसंहार, कुवैत पर इराक का हमला और पूर्वी तिमूर में इंडोनेशियाई सेना के रक्तपात के कारण बहस चल पड़ी है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को मानवाधिकारों के हनन की स्थिति में हस्तक्षेप करना चाहिए या नहीं। कुछ का तर्क है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का घोषणापत्र अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी को अधिकार देता है कि वह मानवाधिकारों की रक्षा के लिए हथियार उठाये। दूसरी तरफ कुछ ऐसे भी हैं जिनका तर्क है कि संभव है, ताकतवर देशों के हितों से यह निर्धारित होता हो कि संयुक्त राष्ट्रसंघ मानवाधिकार-उल्लंघन के किस मामले में कार्रवाई करेगा और किसमें नहीं।

खतरे का एक और स्रोत वैश्विक निर्धनता है। विश्व की जनसंख्या फिलहाल 6 अरब 20 करोड़ है और अगले 25 वर्षों में यह 7 से 8 अरब तक हो जाएगी। संभव है यह आँकड़ा 9-10 अरब तक पहुँच जाए। फिलहाल विश्व की कुल आबादी-वृद्धि का 50 फीसदी सिर्फ 6 देशों - भारत, चीन, पाकिस्तान, नाइजीरिया, बांग्लादेश और इंडोनेशिया में घटित हो रहा है। अनुमान है कि अगले 50 सालों में दुनिया के सबसे गरीब देशों में जनसंख्या तीन गुनी बढ़ेगी जबकि इसी अवधि में अनेक धनी देशों की जनसंख्या घटेगी। प्रति व्यक्ति उच्च आय और जनसंख्या की कम वृद्धि के कारण धनी देश अथवा सामाजिक समूहों को और धनी बनने में मदद मिलती है जबकि प्रति व्यक्ति निम्न आय और जनसंख्या की तीव्र वृद्धि एक साथ मिलकर गरीब देशों और सामाजिक समूहों को और ग़रीब बनाते हैं।

खुशहाली और बदहाली का करीबी रिश्ता

क्या गैर-बराबरी के बढ़ने का सुरक्षा से जुड़े पहलुओं पर कुछ असर पड़ता है?

विश्वस्तर पर यह असमानता उत्तरी गोलार्द्ध के देशों को दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों से अलग करती है। दक्षिण गोलार्द्ध के देशों में असमानता अच्छी-खासी बढ़ी है। यहाँ कुछ देशों ने आबादी की रफ्तार को काबू में किया है और आय को बढ़ाने में सफल रहे हैं जबकि बाकी देश ऐसा नहीं कर पाये हैं। उदाहरण के लिए दुनिया में सबसे ज़्यादा सशस्त्र संघर्ष अफ्रीका के सहारा मरुस्थल के दक्षिणवर्ती देशों में होते हैं। यह इलाका दुनिया का सबसे गरीब इलाका है। 21वीं सदी के शुरुआती समय में इस इलाके के युद्धों में शेष दुनिया की तुलना में कहीं ज़्यादा लोग मारे गए।

दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों में मौजूद गरीबी के कारण अधिकाधिक लोग बेहतर जीवन खासकर आर्थिक अवसरों की तलाश में

आयु–प्रत्याशा

जन्म के समय आयु प्रत्याशा

सहारा मरुस्थल के दक्षिणवर्ती देश – 40 वर्ष

लगभग उन सभी समाजों में जहाँ औसत आयु-प्रत्याशा 70 वर्ष से ज़्यादा है- निजी आय **1000** डॉलर से अधिक है।

फिर भी...

सन 1975 में इन देशों में आयु-प्रत्याशा और आमदनी का एक ब्यौरा

क्यूबा – 70 वर्ष और 540 डॉलर
श्रीलंका – 80 वर्ष और 200 डॉलर
ब्राजील – 61 वर्ष और 750 डॉलर
लीबिया – 53 वर्ष और 3000 डॉलर

ये आँकड़े दिखाते हैं कि किसी देश में आय और सेवाओं का बँटवारा जिस ढंग से होता है उसका गहरा असर समाज के स्वास्थ्य की दशा पर पड़ता है।

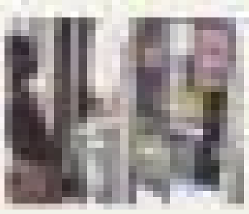

शिशु मृत्यु दर

एक वर्ष की उम्र पूरी करने से पहले मृत्यु की चपेट में आने वाले शिशुओं की संख्या

स्वीडन – **1000** से 3
विकसित देश (औसत) – 100 में 1
भारतीय उपमहाद्वीप – 7 में 1
अफ्रीका के कुछ हिस्सों में – 5 से 1

भोजन के अभाव, साफ-सफाई की कमी और अपर्याप्त चिकित्सीय देखभाल की वजहों से बच्चे और शिशु ज़्यादा चपेट में आते हैं।

पाँच वर्ष की आयु पूरी करने से पहले बाल-मृत्यु (%)

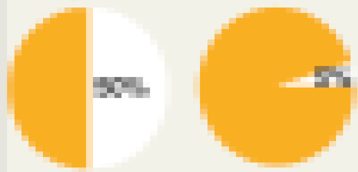

विकासशील देश   विकसित देश

उत्तरी गोलार्द्ध के देशों में प्रवास कर रहे हैं। इससे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक मतभेद उठ खड़ा हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय कायदे कानून आप्रवासी (जो अपनी मर्जी से स्वदेश छोड़ते हैं) और शरणार्थी (जो युद्ध, प्राकृतिक आपदा अथवा राजनीतिक उत्पीड़न के कारण स्वदेश छोड़ने पर मज़बूर होते हैं) में भेद करते हैं। सामान्यतया उम्मीद की जाती है कि कोई राज्य शरणार्थियों को स्वीकार करेगा लेकिन उन्हें आप्रवासियों को स्वीकारने की बाध्यता नहीं होती। शरणार्थी अपनी जन्मभूमि को छोड़ते हैं जबकि जो लोग अपना घर-बार छोड़ चुके हैं परंतु राष्ट्रीय सीमा के भीतर ही हैं उन्हें "आंतरिक रूप से विस्थापित जन" कहा जाता है। 1990 के दशक के शुरुआती सालों में हिंसा से बचने के लिए कश्मीर घाटी छोड़ने वाले कश्मीरी पंडित "आंतरिक रूप से विस्थापित जन" के उदाहरण हैं।

विश्व का शरणार्थी-मानचित्र विश्व के संघर्ष-मानचित्र से लगभग हू-ब-हू मेल खाता है क्योंकि दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों में सशस्त्र संघर्ष और युद्ध के कारण लाखों लोग शरणार्थी बने और सुरक्षित जगह की तलाश में निकले हैं। 1990 से 1995 के बीच सत्तर देशों के मध्य कुल 93 युद्ध हुए और इसमें लगभग साढ़े 55 लाख लोग मारे गये। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति, परिवार और कभी-कभी पूरे समुदाय को सर्वव्याप्त भय अथवा आजीविका, पहचान और जीवन-यापन के परिवेश के नाश के कारण जन्मभूमि छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। युद्ध और शरणार्थियों के प्रवास के आपसी रिश्ते पर नज़र डालने से पता चलता है कि सन् 1990 के दशक में

खुद करें, खुद सीखें

अफ्रीका का एक मानचित्र लीजिए और जनता की सुरक्षा पर मंडराते विभिन्न खतरों को इस मानचित्र पर चिह्नित कीजिए।

कुल 60 जगहों से शरणार्थी प्रवास करने को मजबूर हुए और इसमें तीन को छोड़कर शेष सभी के मूल में सशस्त्र संघर्ष था।

एचआईवी-एड्स, बर्ड फ्लू और सार्स (सिवियर एक्यूट रेसपिरेटॅरी सिंड्रोम- SARS) जैसी महामारियाँ आप्रवास, व्यवसाय, पर्यटन और सैन्य-अभियानों के जरिए बड़ी तेजी से विभिन्न देशों में फैली हैं। इन बीमारियों के फैलाव को रोकने में किसी एक देश की सफलता अथवा असफलता का प्रभाव दूसरे देशों में होने वाले संक्रमण पर पड़ता है।

अनुमान है कि 2003 तक पूरी दुनिया में 4 करोड़ लोग एचआईवी-एड्स से संक्रमित हो चुके थे। इसमें दो-तिहाई लोग अफ्रीका में रहते हैं जबकि शेष के 50 फीसदी दक्षिण एशिया में। उत्तरी अमरीका तथा दूसरे औद्योगिक देशों में उपचार की नयी विधियों के कारण 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध के वर्षों में एचआईवी एड्स से होने वाली मृत्यु की दर में तेजी से कमी आयी है। लेकिन अफ्रीका जैसे ग़रीब इलाके के लिए ये उपचार कीमत को देखते हुए आकाश-कुसुम कहे जाएँगे जबकि अफ्रीका को ज़्यादा गरीब बनाने में एचआईवी-एड्स महत्त्वपूर्ण घटक साबित हुआ है।

एबोला वायरस, हैन्टावायरस और हेपेटाइटिस-सी जैसी कुछ नयी महामारियाँ उभरी हैं जिनके बारे में जानकारी भी कुछ खास नहीं है। टीबी, मलेरिया, डेंगी बुखार और हैजा जैसी पुरानी महामारियों ने औषधि-प्रतिरोधक रूप धारण कर लिया है और इससे इनका उपचार कठिन हो गया है। जानवरों में महामारी फैलने के भारी आर्थिक दुष्प्रभाव होते हैं। 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध के सालों से ब्रिटेन ने 'मैड-काऊ' महामारी के भड़क उठने के कारण अरबों डॉलर का नुकसान उठाया है और बर्ड फ्लू के कारण कई दक्षिण एशियाई देशों को मुर्ग-निर्यात बंद करना पड़ा। ऐसी महामारियाँ बताती हैं कि देशों के बीच पारस्पारिक निर्भरता बढ़ रही है और राष्ट्रीय सीमाएँ अब पहले की तुलना में कम सार्थक रह गई हैं। इन महामारियों का संकेत है कि अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाने की ज़रूरत है।

सुरक्षा की धारणा में विस्तार करने का यह मतलब नहीं है कि हम हर तरह के कष्ट या बीमारी को सुरक्षा विषयक चर्चा के दायरे में शामिल कर सकते हैं। अगर हम ऐसा करते हैं तो सुरक्षा की धारणा में संगति नहीं रह जाती। ऐसे में हर चीज सुरक्षा का मसला हो सकती है। इसी कारण किसी मसले को सुरक्षा का मसला कहलाने के लिए एक सर्व स्वीकृत न्यूनतम मानक पर खरा उतरना ज़रूरी है। मिसाल के लिए, अगर किसी मसले से संदर्भी (राज्य अथवा जनसमूह) के अस्तित्व को खतरा हो रहा हो तो उसे सुरक्षा का मसला कहा जा सकता है चाहे इस खतरे की प्रकृति कुछ भी हो। उदाहरण के लिए मालदीव को

केशव, द हिंदू

यहाँ जो मुद्दे दिखाए गए हैं उनसे दुनिया कैसे उबरे?

उन देशों के नाम जहाँ से बड़ी संख्या में शरणार्थी दूसरे देशों में गए।
2006 में 10 बड़े शरणार्थी समूह

मूलदेश		आश्रय के लिए गंतव्य		कुल
अफ़गानिस्तान	-	पाकिस्तान, ईरान, जर्मनी, नीदरलैंड ब्रिटेन	-	1908100
सूडान	-	चाड, यूगांडा, केन्या, ईथोपिया मध्य अफ्रीकी गणराज्य	-	69300
काँगो लोकतांत्रिक	-	तंजानिया, जांबिया, कांगो रवांडा, यूगांडा	-	430600
सोमालिया	-	केन्या, यमन, ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमरीका, ईथोपिया	-	394800
वियतनाम	-	चीन, जर्मनी, अमरीका	-	358200
फिलीस्तीन	-	सऊदी अरब, मिस्र, इराक लीबिया, अल्जीरिया	-	349700
इराक	-	ईरान, जर्मनी, नीदरलैंड सीरिया, ब्रिटेन	-	262100
अज़रबैजान	-	आर्मेनिया, जर्मनी, अमरीका, नीदरलैंड, फ्रांस	-	262100
लाइबेरिया	-	सियरा लियोन, गयाना, कोटलआरे, घाना, अमरीका	-	231100

www.unher.org से साभार

वैश्विक तापवृद्धि से खतरा हो सकता है क्योंकि समुद्र तल के ऊँचा उठने से इसका ज़्यादातर हिस्सा डूब जाएगा जबकि दक्षिणी अफ्रीकी देशों में एचआईवी-एड्स से गंभीर खतरा है क्योंकि यहाँ हर 6 वयस्क व्यक्ति में एक इस रोग (बोस्तवाना की हालत सबसे बदतर है। वहाँ 3 में से एक व्यक्ति एचआई-एड्स पीड़ित है) से पीड़ित है। 1994 में रवांडा की तुत्सी जनजाति के अस्तित्व पर खतरा मंडराया क्योंकि प्रतिद्वन्द्वी हुतु जनजाति ने कुछ ही हफ्तों में लगभग 5 लाख तुत्सी लोगों को मार डाला। इससे पता चलता है कि सुरक्षा की अपारंपरिक धारणा भी सुरक्षा की पारंपरिक धारणा के समान स्थानीय संदर्भों के अनुकूल परिवर्तनशील है।

एस. केगल्स कार्टून

अंधा विश्व

सहयोगमूलक सुरक्षा

हमने देखा कि सुरक्षा पर मंडराते इन अनेक अपारंपरिक ख़तरों से निपटने के लिए सैन्य-संघर्ष की नहीं बल्कि आपसी सहयोग की ज़रूरत है। आतंकवाद से लड़ने अथवा मानवाधिकारों को बहाल करने में भले ही सैन्य-बल की कोई भूमिका हो (और यहाँ भी सैन्य-बल एक सीमा तक ही कारगर हो सकता है) लेकिन गरीबी मिटाने, तेल तथा बहुमूल्य धातुओं की आपूर्ति बढ़ाने, आप्रवासियों और शरणार्थियों की आवाजाही के प्रबंधन तथा महामारी के नियंत्रण में सैन्य-बल से क्या मदद मिलेगी यह कहना मुश्किल है। वस्तुतः ऐसे अधिकांश मसलों में सैन्य-बल के प्रयोग से मामला और बिगड़ेगा।

ज़्यादा प्रभावी यही होगा कि अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से रणनीतियाँ तैयार की जायँ। सहयोग द्विपक्षीय (दो देशों के बीच), क्षेत्रीय, महादेशीय अथवा वैश्विक स्तर का हो सकता है। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि खतरे की प्रकृति क्या है और विभिन्न देश इससे निबटने के लिए कितने इच्छुक तथा सक्षम हैं। सहयोगमूलक सुरक्षा में विभिन्न देशों के अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय-राष्ट्रीय स्तर की अन्य संस्थाएँ जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन (संयुक्त राष्ट्रसंघ, विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि) स्वयंसेवी संगठन (एमनेस्टी इंटरनेशनल, रेड क्रॉस, निजी संगठन तथा दानदाता संस्थाएँ, चर्च और धार्मिक संगठन, मज़दूर संगठन, सामाजिक और विकास

संगठन) व्यवसायिक संगठन और निगम तथा जानी-मानी हस्तियाँ (जैसे नेल्सन मंडेला, मदर टेरेसा) शामिल हो सकती हैं।

सहयोग मूलक सुरक्षा में भी अंतिम उपाय के रूप में बल-प्रयोग किया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी उन सरकारों से निबटने के लिए बल-प्रयोग की अनुमति दे सकती है जो अपनी ही जनता को मार रही हों अथवा गरीबी, महामारी और प्रलयंकारी घटनाओं की मार झेल रही जनता के दुख-दर्द की उपेक्षा कर रही हो। ऐसी स्थिति में सुरक्षा की अपारंपरिक धारणा का जोर होगा कि बल-प्रयोग सामूहिक स्वीकृति से और सामूहिक रूप में किया जाए न कि कोई एक देश अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी और स्वयंसेवी संगठनों समेत अन्यों की मर्जी पर कान दिए बगैर बल प्रयोग का रास्ता अख्तियार करे।

भारत – सुरक्षा की रणनीतियाँ

भारत को पारंपरिक (सैन्य) और अपारंपरिक खतरों का सामना करना पड़ा है। ये खतरे सीमा के अंदर से भी उभरे और बाहर से भी। भारत की सुरक्षा-नीति के चार बड़े घटक हैं और अलग-अलग वक्त में इन्हीं घटकों के हेर-फेर से सुरक्षा की रणनीति बनायी गई है।

सुरक्षा-नीति का पहला घटक रहा सैन्य-क्षमता को मज़बूत करना क्योंकि भारत पर पड़ोसी देशों से हमले होते रहे हैं। पाकिस्तान ने 1947-48, 1965, 1971 तथा 1999 में और चीन ने सन् 1962 में भारत पर हमला किया। दक्षिण एशियाई इलाके में भारत के चारों तरफ परमाणु हथियारों से लैस देश हैं। ऐसे में भारत के परमाणु परीक्षण करने के फ़ैसले (1998) को उचित ठहराते हुए भारतीय सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा का तर्क दिया था। भारत ने सन् 1974 में पहला परमाणु परीक्षण किया था।

भारत की सुरक्षा नीति का दूसरा घटक है अपने सुरक्षा हितों को बचाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय कायदों और संस्थाओं को मज़बूत करना। भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने एशियाई एकता, अनौपनिवेशीकरण (Decolonisation) और निरस्त्रीकरण के प्रयासों की हिमायत की। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों में संयुक्त राष्ट्रसंघ को अंतिम पंच मानने पर जोर दिया। भारत ने हथियारों के अप्रसार के संबंध में एक सार्वभौम और बिना भेदभाव वाली नीति चलाने की पहलकदमी की जिसमें हर देश को सामूहिक संहार के हथियारों (परमाणु, जैविक, रासायनिक) से संबद्ध बराबर के अधिकार और दायित्व हों। भारत ने नव-अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की माँग उठायी और सबसे बड़ी बात यह कि दो महाशक्तियों की खेमेबाजी से अलग उसने गुटनिरपेक्षता के रूप में विश्व-शांति का तीसरा विकल्प सामने रखा। भारत उन 160 देशों में शामिल है जिन्होंने 1997 के क्योटो प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए हैं। क्योटो प्रोटोकॉल में वैश्विक तापवृद्धि पर काबू रखने के लिए ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के संबंध में दिशा निर्देश बताए गए हैं। सहयोगमूलक सुरक्षा की पहलकदमियों के समर्थन में भारत ने अपनी सेना संयुक्त राष्ट्रसंघ के शांतिबहाली के मिशनों में भेजी है।

भारत की सुरक्षा रणनीति का तीसरा घटक है देश की अंदरूनी सुरक्षा-समस्याओं से निबटने की तैयारी। नगालैंड, मिजोरम, पंजाब और कश्मीर जैसे क्षेत्रों से कई उग्रवादी समूहों ने समय-समय पर इन प्रांतों को भारत से अलगाने की कोशिश की। भारत ने राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने के लिए लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था का पालन किया है। यह व्यवस्था विभिन्न समुदाय और जन-समूहों को

मुझे यह सुनकर अच्छा लगता है कि मेरे देश के पास परमाण्विक हथियार हैं लेकिन कोई मुझे यह समझाए कि क्या इससे मैं ज़्यादा सुरक्षित हो गया हूँ- क्या मेरा परिवार ज़्यादा सुरक्षित हो गया है?

खुद करें, खुद समझें

परंपरागत सुरक्षा और अपरंपरागत सुरक्षा के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा किए जाने वाले खर्च की तुलना करें।

आओ मिलजुल कर करें

चरण

- नदी के किनारे बसे इन चार गाँवों की एक काल्पनिक स्थिति का वर्णन करें।

  नदी के किनारे चार गाँव कोटाबाग, गेवली, कंडली और गोप्पा आसपास बसे हैं। कोटाबाग गाँव के लोग नदी के किनारे सबसे पहले आकर बसे। इलाके के प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों तक उनकी अबाध पहुँच थी। धीरे-धीरे विभिन्न क्षेत्रों के लोग इस इलाके में आने लगे क्योंकि यहाँ पानी और प्राकृतिक संसाधन बहुतायत में उपलब्ध थे। अब यहाँ चार गाँव हैं। समय गुजरने के साथ इन गाँवों की आबादी भी बढ़ी लेकिन संसाधन नहीं बढ़े। हर गाँव ने अपनी सीमा रेखा और उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर दावेदारी जतानी शुरू की। कोटाबाग गाँव के लोग इस इलाके में सबसे पहले आकर बसे थे इसलिए वे संसाधनों में ज़्यादा हिस्सा चाहते थे। कंडली और गेवली गाँव के लोगों का कहना था कि हमारे गाँव की आबादी बाकियों की तुलना में ज़्यादा है इसलिए हमें ज़्यादा हिस्सा चाहिए। गोप्पा गाँव के लोगों का कहना था कि हम लोग रईसी की ज़िंदगी जीते हैं इसलिए हमें ज़्यादा बड़ा हिस्सा मिलना चाहिए भले ही हमारे गाँव की जनसंख्या कम हो। चारों गाँव के लोग एक-दूसरे की माँग से असहमत थे और संसाधनों का इस्तेमाल अपनी मनमर्जी से कर रहे थे। इस वजह से गाँववालों के बीच बराबर झगड़े होने लगे। धीरे-धीरे लोग इस स्थिति से तंग आ गए और उनका चैन जाता रहा। अब इन चारों गाँव के लोग उसी तरह जीना चाहते हैं जैसे बरसों पहले वे जी रहे थे लेकिन उन्हें नहीं पता कि इस स्वर्णयुग में कैसे लौटा जाए।

  प्रत्येक गाँव की विशेषता का वर्णन करते हुए एक संक्षिप्त नोट तैयार करें। यह वर्णन ऐसा हो कि उससे आज के राष्ट्रों की वास्तविक प्रकृति की झलक मिलती हो।

- कक्षा को चार समूह में बाँटें। हर समूह एक गाँव का प्रतिनिधित्व करे। गाँवों की विशेषता का वर्णन करने वाला एक-एक संक्षिप्त नोट हर समूह को दें। जिस समूह को जो नोट मिले वह उसी गाँव की विशेषता को धारण करे।
- पुराने दिनों की तरह किस प्रकार रहा जाए – इस विषय पर चर्चा के लिए अध्यापक प्रत्येक समूह को कुछ समय (15 मिनट) दे। प्रत्येक समूह अपनी रणनीति तय करे।
- गाँवों के नुमाइंदों के रूप में सभी समूह किसी समाधान तक पहुँचने के लिए आपस में मुक्त भाव से चर्चा करें (20 मिनट)। प्रत्येक समूह अपने तर्क रखे और दूसरे के तर्कों का प्रत्युत्तर दे। परिणाम कुछ इस प्रकार का होगा; एक मैत्रीपूर्ण समझौता जिसमें सबकी माँगों का ध्यान रखा गया हो। ऐसा शायद ही कभी होता है। या, पूरी बहस बगैर किसी मकसद को साधे खत्म हो जाएगी।

अध्यापकों के लिए

- गाँवों को राष्ट्र के रूप में वर्णित करें और सुरक्षा/खतरे की समस्याओं को भौगोलिक क्षेत्र/अखंडता, प्राकृतिक संसाधनों तक पहुँच/विद्रोह आदि से जोड़ें।
- समूहों के बीच जब बातचीत हो रही थी तो आपने जो कुछ देखा उसके बारे में बात कीजिए और समझाइए कि विभिन्न राष्ट्र भी ऐसे मसलों पर इसी तरह बातचीत करते हैं।
- विभिन्न राष्ट्रों के भीतर और विभिन्न राष्ट्रों के बीच अभी जो सुरक्षा के मसले मौजूद हैं उनमें कुछ का हवाला देते हुए इस अभ्यास को समाप्त किया जा सकता है।

अपनी शिकायतों को खुलकर रखने और सत्ता में भागीदारी करने का मौका देती है।

आखिर में एक बात यह कि भारत में अर्थव्यवस्था को इस तरह विकसित करने के प्रयास किए गए हैं कि बहुसंख्यक नागरिकों को गरीबी और अभाव से निज़ात मिले तथा नागरिकों के बीच आर्थिक असमानता ज़्यादा न हो। ये प्रयास ज़्यादा सफल नहीं हुए हैं। हमारा देश अब भी गरीब है और असमानताएँ मौजूद हैं। फिर भी, लोकतांत्रिक राजनीति से ऐसे अवसर उपलब्ध हैं कि गरीब और वंचित नागरिक अपनी आवाज़ उठा सकें। लोकतांत्रिक रीति से निर्वाचित सरकार के ऊपर दबाव होता है कि वह आर्थिक संवृद्धि को मानवीय विकास का सहगामी बनाए। इस प्रकार, लोकतंत्र सिर्फ़ राजनीतिक आदर्श नहीं है; लोकतांत्रिक शासन जनता को ज़्यादा सुरक्षा मुहैया कराने का साधन भी है। इस संदर्भ में भारतीय लोकतंत्र की सफलता और असफलताओं के बारे में आप एक और किताब में विस्तार से पढ़ेंगे। यह किताब स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति पर केंद्रित है।

प्रश्नावली

1. निम्नलिखित पदों को उनके अर्थ से मिलाएँ
   (1) विश्वास बहाली के उपाय (कॉन्फिडेंस बिल्डिंग मेजर्स - CBMs)
   (2) अस्त्र-नियंत्रण
   (3) गठबंधन
   (4) निरस्त्रीकरण
   (क) कुछ खास हथियारों के इस्तेमाल से परहेज
   (ख) राष्ट्रों के बीच सुरक्षा-मामलों पर सूचनाओं के आदान-प्रदान की नियमित प्रक्रिया
   (ग) सैन्य हमले की स्थिति से निबटने अथवा उसके अपरोध के लिए कुछ राष्ट्रों का आपस में मेल करना।
   (घ) हथियारों के निर्माण अथवा उनको हासिल करने पर अंकुश

2. निम्नलिखित में से किसको आप सुरक्षा का परंपरागत सरोकार/सुरक्षा का अपारंपरिक सरोकार/'खतरे की स्थिति नहीं' का दर्ज़ा देंगे –
   (क) चिकेनगुनिया/डेंगू बुखार का प्रसार
   (ख) पड़ोसी देश से कामगारों की आमद
   (ग) पड़ोसी राज्य से कामगारों की आमद
   (घ) अपने इलाके को राष्ट्र बनाने की माँग करने वाले समूह का उदय
   (ङ) अपने इलाके को अधिक स्वायत्तता दिए जाने की माँग करने वाले समूह का उदय।
   (च) देश की सशस्त्र सेना को आलोचनात्मक नज़र से देखने वाला अखबार।

3. परंपरागत और अपारंपरिक सुरक्षा में क्या अंतर है? गठबंधनों का निर्माण करना और उनको बनाये रखना इनमें से किस कोटि में आता है?

4. तीसरी दुनिया के देशों और विकसित देशों की जनता के सामने मौजूद खतरों में क्या अंतर है?

5. आतंकवाद सुरक्षा के लिए परंपरागत खतरे की श्रेणी में आता है या अपरंपरागत?

प्रश्नावली

6. सुरक्षा के परंपरागत दृष्टिकोण के हिसाब से बताएँ कि अगर किसी राष्ट्र पर खतरा मंडरा रहा हो तो उसके सामने क्या विकल्प होते हैं?
7. 'शक्ति-संतुलन' क्या है? कोई देश इसे कैसे कायम करता है?
8. सैन्य गठबंधन के क्या उद्देश्य होते हैं? किसी ऐसे सैन्य गठबंधन का नाम बताएँ जो अभी मौजूद है। इस गठबंधन के उद्देश्य भी बताएँ?
9. पर्यावरण के तेजी से हो रहे नुकसान से देशों की सुरक्षा को गंभीर खतरा पैदा हो गया है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? उदाहरण देते हुए अपने तर्कों की पुष्टि करें।
10. देशों के सामने फिलहाल जो खतरे मौजूद हैं उनमें परमाण्विक हथियार का सुरक्षा अथवा अपरोध के लिए बड़ा सीमित उपयोग रह गया है। इस कथन का विस्तार करें।
11. भारतीय परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए किस किस्म की सुरक्षा को वरीयता दी जानी चाहिए – पारंपरिक या अपारंपरिक? अपने तर्क की पुष्टि में आप कौन-से उदाहरण देंगे?
12. नीचे दिए गए कार्टून को समझें। कार्टून में युद्ध और आतंकवाद का जो संबंध दिखाया गया है उसके पक्ष या विपक्ष में एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

एस. केगल्स कार्टून